International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(3): 149-152

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(3): 149-152
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 27-03-2018
Accepted: 28-04-2018

**सोनिया**
शोधच्छात्रा पीएच०डी,
संस्कृत–विभाग, हिमाचल प्रदेश,
भारत

**कौशल्या चौहान**
शोध–निर्देशक, संस्कृत–विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
समरहिल, शिमला, हिमाचल प्रदेश,
भारत

**Correspondence**
**सोनिया**
शोधच्छात्रा पीएच०डी,
संस्कृत–विभाग, हिमाचल प्रदेश,
भारत

# बौद्ध–धर्म में ध्यान

## सोनिया, कौशल्या चौहान

### प्रस्तावना

आध्यात्मिक जगत् में ध्यान साधना का बहुत ऊंचा स्थान है । ध्यान, समाधि तथा योग आदि शब्द भारतीय दर्शन में प्रचुरतया मिलते है। ध्यान–समाधि के बिना धर्म का साक्षात्कार करना असम्भव है। ध्यान, योग, समाधि आदि प्रक्रियाओ का प्रारम्भ वैदिक काल मे हो चुका था। प्राचीन काल में भारतीय ऋषि मुनि गुफाओं तथा कन्दराओं मे ध्यानास्थ होते और ध्यान साधनाओं द्वारा अमरत्व, स्वर्गत्व, आत्मत्व, ईश्वरत्व तथा ब्रह्मत्व को प्राप्त करते थे। ध्यान आन्तर जगत् को रहस्यपूर्ण और आलौकिक अनुभूति प्रदान करता है जिससे जीवन पर्यन्त हम सर्वथा अपरिचित ही बनकर रह जाते हैं। इस विश्व ब्रह्माण्ड मे समस्त शक्तियो का भण्डार, समस्त विश्व का संचालक तथा समस्त चेतनाओं का मूलभूत तत्व एकमात्र परब्रह्म परमात्मा ही है। इस सत्य को मान लेने पर तथा उसका (परब्रहा) का ध्यान कर लेने पर अज्ञान के सारे आवरण हट जाते हैं। यह कार्य ध्यान साधना के बिना सम्भव नही हो सकता है क्योंकि पवित्र साधना से ही पवित्र साध्य की प्राप्ति होती है।[1]

### बौद्धेतर दर्शनों में ध्यान

ऋग्वेद में योग शब्द के द्वारा ध्यान चित्तैकाग्रता और आध्यात्मिक साधना का प्रतिपादन किया गया है।[2] ऋग्वेदीय मंत्र मे ध्यान की एक पद्धति बतायी गई है कि नदी–नद आदि जल जैसे समुद्र में ही समा जाते है वैसे ही परमेश्वर में ध्यान करने वाले साधक अपनी इन्द्रियों को समेटकर परमात्मा के आन्नद में निमग्न हो जाते है।[3] उपासक सर्वात्मना परमात्मा में मन आदि के द्वारा निमग्न हो उसी प्रकार ध्यान करे, जिस तरह उपासक सदा से सर्वज्ञ महान परमेश्वर में, मन बुंद्धि एवं सम्पूर्ण ज्ञान को समर्पित करते आये हैं।[4]

यजुर्वेद में नाडियों के द्वारा परमानन्द की वृद्धि का निर्देश करते हुए उल्लेख आता है कि नाडियों में ध्यान करके ही परमानन्द की वृद्धि होती है और अन्तःकरण को शुद्ध करके विज्ञान रूपी बीज बोने की योग्यता आ जाती है।[5] सामवेद ज्योर्तिमय, तेजोमय परमात्मा का ध्यान करने की पद्धति का निर्देश करता है । उपासक सामवेदीय आग्नेयकाण्ड के अन्तर्गन्त उस प्रकाश स्वरूप परमात्मा की अनेक शक्तियों का तथा ध्यान में अग्रसर करने वाले गुणों का ध्यान करते हुए कहता है कि हे, उपासकों! जिस प्रकार मैं अतिथि सदृश पूजनीय तथा मित्र के समान प्रिय, प्रगति के लिए रथ के समान, पापणीय परमात्मा की उपासना तथा स्तुति करता हूँ अर्थात् ध्यान करता हूं उसी प्रकार तुम भी स्तुति किया करो।[6] सामवेद के अन्य मन्त्र में उपासक परमेश्वर के प्रकटीकरण का रहस्योद्घाटन करता है कि हे, प्रकाश स्वरूप परमात्मन्! स्थिर–चित्त वाले ध्यानी उपासक ने शरीर की पुष्टि करने वाले हृदय से आपको मथा है तथा मथकर आपको प्रकट किया है और समग्र शरीर का वहन करने वाले मूर्धास्थान से मथकर आपको प्रकट किया है ।[7]

प्राचीन उपनिषदों मे भी समाधि के लिए योग तथा ध्यान शब्द का प्रयोग किया गया है। छान्दोग्य – उपनिषद में पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, जल, पर्वत, देव, मनुष्य सभी को ध्यान करते हुए बतलाया गया है ।[8] कठोपनिषद् में ध्यान शब्द को अध्यात्मयोग, अन्तर्ज्ञानात्मक आत्मसाक्षात्कार के लिए प्रयुक्त किया गया है कि जो ब्रह्म सनातन दुर्लभ दर्शन, गूढ तथा सर्वव्याप्त हृदय रूप गुफा में स्थित रहता है। उसे बुद्धिमान पुरुष अध्यात्मिक योग द्वारा समझकर हर्ष, शोक आदि से मुक्त हो जाता है।[9] उस ब्रह्मा की प्राप्ति या मुक्ति के लिए ज्ञान दृष्टि आवश्यक है किन्तु ज्ञान दर्शन के लिए ध्यान और एकाग्रता की आवश्यकता भी होती है जिस प्रकार उस ब्रह्म को न आंखो से ग्रहण किया जा सकता है और न ही मन, वचन तथा तपस्या के द्वारा। परन्तु ज्ञान की शुद्धता से जो मन विशुद्ध हो गया है वह निरन्तर ध्यान करते हुए उस ब्रह्म का दर्शन करवा देता है ।[10]

मुण्डकोपनिषद में ब्रह्म की प्राप्ति के लिए मन की तन्मयता को आवश्यक बतलाते हुए कहा गया है कि ओंकार स्वरूप धनुष को ग्रहण कर उस पर तप द्वारा तीक्ष्ण हुए बाण को चढा कर खीचों और अविनाशी ब्रह्म का लक्ष्य मानते हुए उसे बेंध डालो।[11] श्वेताश्वतरोपनिषद मे ब्रह्मवादियो ने ध्यान योग से अनुगत होकर अपने गुणो से निगुढ देवात्मा शक्ति का दर्शन किया। जैसे–तिलों में तेल, दधि मे धृत, स्रोतों मे जल तथा अरणियों–समिधाओ में अग्नि अदृश्य रूप से रहती है वैसे ही हृदय मे परमेश्वर अदृश्य रूप में रहता है। जो व्यक्ति इसे सत्य और संयम से देखता है वह इस ब्रह्म द्वारा ग्रहण होता है।[12]

बृहदारण्यकोपनिषद् में ध्यान को आत्मा माना गया है। आत्मा को द्रष्टव्य, श्रोतव्य, मन्तव्य और निदिध्यासितव्य कहा गया है।[13] बाहरी विषयों से मन का हटाकर ज्योतिर्मय परमतत्व का ध्यान ही उपनिषदों मे अभिप्रेत ध्यान हैं। ब्रह्मसूत्र में महर्षि बादरायण ने मन की एकाग्रता को ध्यान का प्रधान साधन माना है। उन्होंने कहा है कि जिस देश और काल में मन की एकाग्रता और स्थिरता हो उस देश में उपासना करनी चाहिए।[14]

न्यायदर्शन में तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति को ही ध्यान माना गया है। ध्यानयोग की प्राप्ति होने पर तत्त्वज्ञान उत्पन्न हो जाता है। बाहरी विषयों से इन्द्रियों को हटाकर तथा मन की वृत्तियों का प्रयत्न एवं अभ्यासपूर्वक निरोध करके उसे आत्मा के साथ जोड लेना समाधि का स्वरूप है।[15] समाधि का अभिलाषी व्यक्ति या योगी अरण्य, गुहा, पुलिन तथा नदी के पवित्र तट आदि एकान्त स्थानो में रहकर ध्यान समाधि का अभ्यास कर सकता है।[16] न्यायदर्शन के अनुसार समाधि की सिद्धि के लिए यम, नियम, योग, अध्यात्म आदि आत्म संस्कार के उपाय भी आवश्यक है।[17]

वैशेषिक दर्शन में महर्षि कणाद ने योग के अंगो अर्थात् अंहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह– इन पांच यमों तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्राणिधान इन पांचो नियमों का वर्णन कहा है। जिस पुरूष में पांचों यम नही हैं उस पुरूष मे पाँचो नियम भी नही है क्योंकि उसका धूम–वह्निन की भान्ति परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है।[18]

सांख्यदर्शन में महर्षि कपिल मुनि ने विषयों से रहित मन की स्थिति को ध्यान कहा है। रागों के नाश का हेतु भी ध्यान को ही माना गया है।[19] विषयों के प्रति जो प्रीति ज्ञान को रोकने वाली है उसके नाश का कारण भी ध्यान ही है।[20] ध्येय से भिन्न सम्पूर्ण पद्धार्थों से वृत्तियों को रोकने से ध्यान सिद्ध होता है तथा ध्यान के सिद्ध होने पर ज्ञान की उत्पत्ति होती है। ज्ञान को आरम्भ करने मात्र से ज्ञान नही होता।[21]

पतञ्जलि ने ध्यान का सम्बन्ध केवल मन से माना है उनके अनुसार जिसमें धारणा की गई है, उस देश में ध्येय विषयक ज्ञान की एकतानता, जो अन्य ज्ञानों से अपरामृष्ट हो ध्यान कहलाती है।[22] योगदर्शन में ध्यान योग के आठ अंगों का निर्देश मिलता है – यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि।[23]

जैनदर्शन मे ध्यान को झान कहा गया है। चित्त को किसी एक लक्ष्य पर मुहूर्त भर भी एकाग्र करना ध्यान है। जैन दर्शन मे ध्यान समाधि का त्रियौगिक अर्थात् मन, वचन और कायिक स्वीकार किया गया है।[24]

## बौद्ध धर्म में ध्यान

ध्यान शब्द ध्यै चिन्तायाम्[25] धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ चिन्तन है। वसुवन्धु कहते हैं कि जिससे ध्यान करते हैं और समाहित चित्त में जो यथाभूत ज्ञान होता है वही ध्यान कहलाता है।[26] अभेद रूप से बिना किसी अन्तर के ध्यान समाधि स्वभाव से कुशल चित्त की एकाग्रता है।[27] बुद्धघोष के अनुसार आलम्बन को देखकर चिन्तन करने या प्रतिकूल धर्मों को जला देने से 'झान' कहलाता है।[28] ध्यान होने से धर्म प्राप्त होते है जिससे वह परम् पद को प्राप्त करता है, जो दुर्लभ, शान्त, अजर और अमर है।[29]

ध्यान बौद्ध धर्म का हृदय है। ध्यान करना ही बुद्ध कार्य करना है।[30] भगवान् बुद्ध स्वयं एक ध्यानी महात्मा थे। उन्होंनें ध्यान की चार स्थितियाँ पार करके उसकी चरम सीमा अर्थात् आत्म–नियन्त्रण एवं स्थिरता को प्राप्त किया था।[31] उन्होने ध्यान को अधिक महत्व दिया था। तथागत की देशना में ध्यान ही मार्ग का प्रधान अंग था। ध्यान के द्वारा ही बोधिसत्त्व ने सम्बोधि का लाभ प्राप्त किया था उनके महापरिनिर्वाण के बाद लोग उनकी याद एक ध्यानी महात्मा के रूप में ही करते है।[32] बौद्व दर्शन के साहित्य में बुद्ध के ध्यानी जीवन के अनेक चित्र विद्यमान है। कभी सूने घरों में, कभी नदी के तट पर, कभी पर्वत पर कभी खुले मैदानों मे, कभी दोपहर की कडी गर्मी में, कभी सघन अन्धकार वाली अद्धरात्रि में रिमझिम वर्षा हो रही हैं तथा कभी भगवान् बुद्ध को ध्यानास्थ में बैठे अनेक बार देखते है। बुद्ध अपने शिष्यों को बार–बार ध्यान करने की तथा समाधिस्थ होने की स्वयं प्रेरणा देते थे। वे कहते थे कि हे, भिक्षुओं! ये सामने अरण्य हैं, यह सामने वृक्षों की छाया है, और यह एकांत है, ये शेष अवकाश है, शमशान है। हे, भिक्षओं! यहां आसन लगाओं और ध्यान करो, ध्यान करने में प्रमाद मत करो। यही हमारी अनुशासना है।[33]

बौद्ध धर्म में अर्हत्त पद की प्राप्ति को ही ध्यान का चरम लक्ष्य माना है। जिस योगी ने तत्त्व का दर्शन नहीं किया और जो विविध विषयों में पड़ा हुआ है, वह भिक्षु अपने मन को आसानी से नहीं रोक सकता, जैसे–खेती खाने वाले सांड को फसल के बीच से आसानी से नही हटाया जा सकता।[34] बुद्ध अपने भाई नन्द से कहते हैं कि जिस प्रकार वायु से प्रेरित होती हुई अग्नि शान्त हो जाती है उसी प्रकार साधक का एकान्त में प्रकम्पन रहित मन अल्पयत्न से शान्ति को प्राप्त होता है।[35]

भगवान् बुद्ध को ध्यान योग बचपन से ही प्राप्त था। यह एक आलौकिक चमत्कार था इसकी पुष्टि ललितविस्तर और बुद्धचरित से भी होती है। भगवान् बुद्ध कहते हैं कि हे, भिक्षुओं। मुझे बचपन में अपने पिता के उद्यान में जम्बु वृक्ष की शीतल छाया में बैठ कर कामवासनाओ ंसे अलग अशुभ पाप धर्मों से अछूते, वितर्क एवं विचार अर्थात स्थूल एवं सूक्ष्म

चिन्तन से युक्त विवक से उत्पन्न प्रीति तथा सुख से उत्पन्न प्रथम ध्यान का स्मरण हो गया था। जबकि वे अल्पव्यस्क बालक ही थे।[36] सिद्धार्थ ने बुद्धत्व पाने की इच्छा से यह विचार किया कि इस धर्म से न विराग होगा, न बोध तथा न ही मुक्ति होगी। उस समय जम्बु वृक्ष के मूल में मैने जो विधि प्राप्त की थी, वही शाश्वत (ध्रुव) है। बोधि का वह मार्ग निरन्तर होने वाले जाति, जरा और मरण के अस्त हो जाने का मार्ग है, उनके अनुसार बुद्ध को ज्ञान हुआ कि वह मार्ग बोधि का है।[37]

भगवान् बुद्ध महानिष्क्रमण के बाद परम् ज्ञान की खोज में आचार्य अराड़कलाम के पास जाते है।कपिलवस्तु में सिद्धार्थ ने इनका नाम सुना था। भगवान् बुद्ध के समय में अराड़कलाम और उद्दकरामपुत्र ध्यान मार्ग के महान् तापस आचार्य रहते थे जिनके शिष्य यत्र–तत्र ध्यान की शिक्षा देते थे। भगवान् बुद्ध सच्चे ज्ञान लाभ तथा सम्बोधि की खोज में आचार्य अराड़कलाम के आश्रम में जाते है जहां आचार्य उन्हें ध्यान मार्ग की सातवीं सीढ़ी 'आकिंचञ्ञायातन' नामक ध्यान योग की शिक्षा देते है। इस ध्यान में मनुष्य को कोई कामना नही रह जाती है।[38] ज्ञान पिपासु बुद्ध इससे असन्तुष्ट हो अन्वेषक बन उद्दकरामपुत्र के पास पहुंचते है जिनसे उन्हें ध्यानयोग की आठवीं सीढ़ी नैवसंज्ञानासंज्ञायतन' नामक ध्यान की शिक्षा मिलती है। इस ध्यान में साधक स्थूल जगत् से आरम्भ कर ध्यान के बल पर सूक्ष्म जगत् में प्रवेश करता है। उसके लिए जगत् सूक्ष्म तथा स्थूल बनता जाता है।इस गति से वह ऐसे बिन्दू पर पहुंचता है जहां संसार की समाप्ति होती है। विज्ञान का अन्त होता है। इस ध्यान मे इन्द्रियां अनुभव होती है।इसके अनन्तर साधक को निर्वाण में कूदने में तनिक भी विलम्भ नही होता है।आराडकलाम से प्राप्त हुई भूमिका के द्वारा यह भूमिका उच्चतर थी।[39]

बुद्ध इससे भी आगे बढ़ते हैं और गया में उरूवेला के निकट नैरञ्जरा नदी के तट पर एक पीपल वृक्ष के नीचे स्थिर भाव से तपस्या करते है, ध्यानरत होते है जिसमें उनको ज्ञान प्राप्त होता है कि आत्मा को कष्ट दे कर ध्यानाराधन और ज्ञानाराधन नही किया जा सकता, न ही भोगों में संलग्न होकर ही ज्ञान को पाया जा सकता है। वे मध्यम मार्ग ग्रहण कर कुछ भोजन को लेकर समाधि में लीन होते हैं तथा सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करते है और निर्वाण का अनुभव करते है। सम्बोधि लाभ के बाद भगवान् बुद्ध जीवन भर ध्यान चिन्तन करते रहते थे। निर्वाण को भी बुद्ध ने ध्यान की विभिन्न अवस्थाओं में संचरण करते हुए प्राप्त किया था।[40] भगवान् बुद्ध कभी भी ध्यान से रिक्त नही रहते थे, उठते, बैठते, सोते, जागते तथा बातें करते सदा ध्यान में रहते थे। जिस धर्म का उन्होने उपदेश दिया, उसका अभ्यास बिना ध्यान के कोई नही कर सकता। जिस प्रकार बिना नाम स्मरण के कोई वैष्णव या भक्त नही है, उसी प्रकार ध्यान किये बिना कोई बौद्ध नही होता, बिना ध्यान के बौद्ध का कोई अर्थ नही है।[41]

भगवान् बुद्ध सदा ध्यान और समाधि की प्रशंसा करते थे और कहते थे कि जो ध्यान योगी होता है उसका मन हमेशा स्वस्थ और प्रसन्न रहता है और जिस योगी का चित्त समाधि से युक्त है उसे ही ध्यान का लाभ होता है।[42] चित्त धर्म धातु और तथता है।इसकी अनुभूति साधक को उस समय होती है जब योगी आत्मा और अदृश्य जगत् दोनों को मिथ्या समझने लगता है और ध्यान में चिन्तन करने लगता है कि दृश्य जगत् मिथ्या है। यही हमारी कल्पना की सृष्टि है। साधक की इस अनुभूति के फलस्वरूप उसके सविकल्पक चित्त का अन्त हो जाता है क्योंकि ज्ञाता और ज्ञेय का द्वैत अनिवार्य है। ज्ञेय के अन्त होने पर ज्ञाता का भी अन्त हो जाता है उसके ज्ञाता और ज्ञेय, ग्राहक और ग्राहा से ऊपर उठने पर ध्यान साधक को धर्म धातु का दर्शन होता है।[43]

## उपसंहार

इस वैज्ञानिक युग में मनुष्य सभी कुछ जानने का दावा करता है परन्तु अपने स्वरूप को नहीं पहचानता। मनुष्य की इससे बडी विडम्बना और क्या हो सकती है। हमारे शरीर के भीतर मन, बुद्वि चित्त तथा अंहकार और इन्द्रियों आदि का ज्ञान हमें नही होता। केवल स्थूल इन्द्रियो को छोडकर शेष किसी का भी ज्ञान मनुष्य को नही होता जबकि व्यवहारिक जगत् में हमारा समस्त कार्य व्यापार आदि इन्ही के द्वारा सम्पन्न हो रहा है। ध्यान साधना के द्वारा ही इनका ज्ञान मनुष्य को हो पाता है क्योंकि ध्यानकाल में ही इनका साक्षात्कार हो जाता है। इस लिए ध्यान का अभ्यास केवल योगी के लिए ही नही अपितु सभी के लिए नितान्त आवश्यक है। ध्यान की अपनी उत्कृष्टता के कारण अष्टाङ्•ग से युक्त राजयोग का ध्यान योग कहा जाता है। ध्यान साधना के द्वारा ही ध्यानी योगी के मन की मलिनता दूर होती है ध्यानी के मन में शुद्धता या पवित्रता आते ही मन में छिपी हुई गुप्त शक्तियां जागृत होने लगती है। ध्यानी के भीतर वे गुप्त शक्तियां कार्य करने लग जाती है। ध्यान योग के अभ्यास से अनेकानेक मौलिक विचारों का उदय या सृजन भी होता रहता है। जब योगी ध्यान साधना द्वारा इस चक्र भ्रमण रूप वासना प्रवाह का सर्वथा निर्वाह करके उस परब्रह्म परमात्मा से प्रीति करता है तब ध्यान समाधि की प्राप्ति होती है ।

बौद्ध धर्म में ध्यान का मनोवैज्ञानिक महत्व है। इसका कारण यह है कि उसकी साधना की मुख्य प्रक्रिया अपने स्वभाव के अन्दर देखना या अपने मन के सार को खोजना है। भगवान् बुद्ध को ध्यानयोग बचपन से ही प्राप्त था। यह एक चमत्कार था। उनके महापरिनिर्वाण के बाद लोग उनकी याद एक ध्यानी महात्मा के रूप मे ही करते है। अनवरत रूप से धर्मोपदेश करते हुए और लोगो के बीच विचरण करते हुए बुद्ध सदा ही ध्यान में लीन रहते थे। तथागत के दशबलों में से एक बल में उनके ध्यान, समाधि और समापति से समन्वागत होना बतलाया गया है। उनके अष्टादश आवेणिक धर्मो में भी कहा गया है कि तथागत के समाधि की हानि नही होती (नास्ति तथागतस्य समाधिहानिः)। ध्यान सुखकर है। ध्यान की महिमा बौद्ध धर्म के सभी रूपों मे सुरक्षित है। यह परम शान्ति एवं एकता का प्रापक है। ध्यान का साधक समाहित चित्त से युक्त अनेक मानसिक सिद्धियों कों प्राप्त करता है तथा उसका विनिपात कभी नही होता, वह धर्मपरायण एवं सम्बोधि परायण होकर निर्वाणगामी होता है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची


1. अभिधर्मदेशनाः बौद्ध सिद्धान्तों का विवेचन, पृष्ठ, 17
2. अभिधर्मदेशनाः बौद्ध सिध्द्धान्तों का विवेचन, पृष्ठ, 174
3. आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते।। ऋग्वेद, 8, 92.22
4. यञ्जते मन उत युञ्जते धियो। विप्रा विप्रस्य वृहतो विप्रश्चितः।
   वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्महो देवस्य सवितुः परिष्टुति।। ऋग्वेद, 5.82.2
5. युनक्त सीराावि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
   गिरा च श्रुष्टि सभरा असन्नो नेदीय इत्सृव्यः पक्वमेयात।। यजुर्वेद, 12.68
   प्रेष्ठं वो अतिथि स्तुषे मित्रामिव प्रियम्। अग्ने रथं न वेद्यम।सामवेद, 5.1.1
6. त्वामग्ने पुष्पकरादध्यथर्वा निरमन्थत मूर्ध्नो विश्वस्य वाद्यतः। सामवेद, 9.1
7. ध्यानं वाव चितादभूयो ध्यातीव पृथ्वी ध्यातीव अन्तरिक्ष ध्यातीव। छान्दोग्यपनिषद, 7.6.1
8. तं दुर्दशं गुढमनुप्रविष्टं गुहाहितमं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
   अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोको जहाति। कठोपनिषद, 1.2.12
9. नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो वन चक्षुषा ।
   अस्तीति ब्रवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ।। कठो., 3, 1.12
10. धनुगृहीत्वौषनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपानिशितं सन्धयीत।
    आयम्य तद्भावग्तेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षं सौम्य विधि। मुण्डकोपनिषद, 2.3
11. तिलेषु तैलं दधनीव सर्पि रापः स्रोतः स्वरणीषु चाग्निः।
    एवमात्माऽऽत्मनि ग्रहतेऽसौ सत्नैनं तपस्या योडपुपश्यति।। श्वेताश्वतरोपनिषद, 1.15
12. आत्मा वा अरे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य मैत्राय्यात्मनो वा।। वृहद., 2.4.5
13. यत्रैकाग्रता तत्र विशेषात्।। ब्रह्म., 4.1.11
14. समाधि विशेषभ्यासात्।। न्यायदर्शन, 4.2.38
15. अरण्यगुहा पुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः।। न्याय. 4.2.4.2
16. तदर्थयनियमाभ्यासात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्म विध्युपायै।। न्याय, 4.2.4.2
17. नियम भावात विद्यते वाऽर्थान्तरत्वाद यमस्य।। वैशि. दर्शन, 6.2. 8
18. ध्यानं निर्विषयं मनः।।सांख्यदर्शन, 6.25
19. रागोपहितर्ध्यानम्।। सांख्य, 3.30
20. वृत्तिनिरोधात् ततिसिद्धिः।। सांख्य, 3.31
21. तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम।। योगदर्शन, 3.2
22. यमनियमाऽऽसनप्राणायाम्प्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽऽष्टावङ्. गानि।। योगदर्शन, 2.29
23. अभिधर्मदेशनाः बौद्व सिद्धान्तो का विवेचन, पृ 181
24. 1.648, संस्कृत धातुकोषः, पृ०, 68
25. ध्यायन्त्यनेनेति।प्रजानन्तीत्यर्थः।समाहितचित्तस्य यथाभूतप्रज्ञानात्, अभिधर्मकोशभाष्य, पृ०, 1127
26. अभेदेनकुशलचितैकाग्रता ध्यानंसमाधिस्वभावात्।अभिधर्मकोशभाष्य पृ०, 1127
27. आरम्मणूपनिज्झानतोपच्चनीकझापनतो वाझानं।विशुद्धिमग्ग, 4, 119

28. ध्यानप्रवर्त्तनाद्धर्माः प्राप्यन्ते यैरवाप्यते।
दुर्लभं शान्तमज्जरं पर ंतदमृतं पदम्।।बुद्धचरित, 12, 10
29. ध्यानसम्प्रदाय, पृ०, 9
30. गौतम बुद्ध जीवन और दर्शन, पृ०, 14
31. बौद्ध धर्म दर्शन, पृ०,3
32. एतानि वो भिक्षुवोऽरण्यायततानि वृक्षमूलानि शून्यगाराणिपर्वकंदरगिरिगुहापलांलपुञ्जानि,
अभ्यवकाशशमशानवनप्रस्थप्रान्तानि शयनासनानि अध्यावसत। ध्यायत, भिक्षर्वो,
माप्रमाद्यत।मापश्यचादविप्रतिसारिणोभविष्यथ।इदमनुशासनम्।अर्थ विनिश्चयसूत्र, पृ०, 67
33. अदृष्ट तत्वेन परीक्षकेण स्थितेनचित्रे विषयप्रचारे।चित्तं निषेद धुर्न सुखेन शक्यं कृष्टादकोगौरिवसस्यमध्यात् ।।
सौन्दरनन्दमहाकाव्य, 14, 48
34. सौन्दरनन्द महाकाव्य, 14, 49
35. तस्य में भिक्षव एतदभवत्—यदहं पितुरूद्याने जम्बुच्छायां।
निष्णोविविवतंकामैर्विविक्तंपापकैरकुशलैधमैः
सवितर्कसविचारंविवेकजंसुख
प्रीतिसुखंप्रथम ध्यानमुसंद्य।।ललितविस्तर पृ०, 259
36. बुद्धचरित, 12, 101
37. बौद्ध धर्म दर्शन, पृ०, 3
38. बौद्ध दर्शन मीमांसा, पृ०, 296
39. अभिधर्मदेशनाः बौद्ध सिद्धान्तों का विवेचन, पृ०, 176
40. ध्यानसम्प्रदाय, द्वितीय परिच्छेद, पृ०, 9
41. स्वस्थ प्रसन्न मनसः समाधिरूपपद्यते।
समाधियुक्तचितस्य ध्यानयोगः प्रवर्तते।।बुद्धचरित, 12, 105
42. नास्तीति चित्रात् परमेत्य बुध्या चित्तस्य नास्िततत्त्वमुपैति तस्मात्।
द्वयस्य नास्तित्वमुपैत्य धीमान् संतिष्ठनेऽनदगति धर्मधतौ।महायानसूत्रालंकार, 6.8